ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 312-314
www.allresearchjournal.com
Received: 29-10-2014
Accepted: 04-12-2014

डॉ. आशुतोष नंदन
समाजशास्त्र विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आशुतोष नंदन
समाजशास्त्र विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर, बिहार, भारत

भारत में जातीय व्यवस्था का तथ्यात्मक विश्लेषण

डॉ. आशुतोष नंदन

सारांश
प्रस्तुत शोध में भारतीय संघ में जातीय व्यवस्था के स्वरूप का पुनरावलोकन किया गया है। जिसके अन्तर्गत भारत में जातियों का विकास तथा जातियों का वर्गीकरण बिंदुओं को आधार बनाया गया है । यह शोध समाजशास्त्रियों तथा विषय विदो की इस सम्बन्ध में सोच को विकसित करता है तथा जातियों की उत्पत्ति के सिद्धांतो का भी विश्लेषण करता है । भारत में जातीय अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल से चलन में है इसलिए इस विषय में अध्ययन करना बेहद कारगर सिद्ध होगा ।

कूट शब्द: जाति, जातीय व्यवस्था, सामाजिक स्तरीकरण, क्षत्रिय, पारंपरिक सिद्धांत ।

प्रस्तावना:
जाति सामाजिक स्तरीकरण की एक प्रणाली है जो भारतीय सामाजिक संरचना के मूल में है। इसमें जन्म के अनुसार रैंकिंग शामिल है और एक व्यक्ति के विवाह, व्यवसाय तथा सामाजिक संबंधों को निर्धारित करता है। जाति के इस दृष्टिकोण का इतिहास समाजशास्त्रीय इतिहास में बहुत पहले से ही पाया जाता है और यह प्रवृत्ति आज भी जारी है।[1] लोकतांत्रिक भारत में जातीय व्यवस्था एक सामाजिक संरचना के रूप में विद्यमान रही है। जिसने मेगस्थनीज से लेकर आज तक किसी भी विदेशी के ध्यान को आकर्षित करने में सर्वोत्तम उपलब्धि हासिल की है। जाति व्यवस्था के संबंध में ऐसा माना जाता रहा है कि भारत की वायु में जाति विद्यमान है जो जहां भी श्वास लेता है उसमें जाति के तत्व प्रवेश कर जाते हैं। भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति अथवा विकास क्रम के संबंध में विद्वानों के मतों में एकजुटता नहीं दिखाई देती बल्कि इस संबंध में परस्पर विरोधाभास की स्थिति रही है।
जी. एच. घुर्ये का यह मानना है कि जाति को परिभाषित करने की कोई भी कोशिश इसकी जटिलता के कारण नाकाम हो जाएगी। उन्होंने जाति को विष्लेषित करते हुए कहा है कि, ‘‘जाति व्यवस्था में वंशानुगत सदस्यता, श्रेणीबद्धता, अन्तर्विवाह, भोजन व सामाजिक व्यवहार पर प्रतिबन्ध, पेशे के स्वतंत्र चुनाव पर प्रतिबन्ध तथा नागरिक व धार्मिक योग्यताएं, आदि विशेषताएं अपरिवर्तन्यीलता की हद तक समाहित हैं।‘‘ [2]
ए. एल. कॉपर के अनुसार “जाति एक आन्तरिक एवं पैतृक उप-संरचना है जो एक विशिष्ट वर्ग है जिसे समाज में दूसरे वर्गो के साथ उच्च या निम्न स्थान प्राप्त है।” [5]
राम आहूजा के अनुसार जाति ‘वर्ण’ का विकसित रूप है जो प्राचीन भारत में वर्ग के रूप में आरम्भ हुआ था। और धीरे धीरे इसे धार्मिक मान्यता प्राप्त हो गई ।”

अध्ययन उद्देश्य -
इस शोध का प्रमुख उद्देश्य लोकतांत्रिक भारत में जातीय व्यवस्था के विश्लेषण के उद्देश्य से निम्न बिंदुओं का अध्ययन किया गया है।

भारत में जातीय व्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन करना तथा जातीय वर्गीकरण के सम्बन्ध में समझ को विकसित करना।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध कार्य में द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों को आधार मानते हुए जातीय व्यवस्था के संबंध में विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है।

जातीय व्यवस्था का विकास तथा उत्पति

भारत में जातीय व्यवस्था के संदर्भ में मान्यता है कि ऋग्वेद कालीन वर्ण व्यवस्था उत्तर वैदिक काल के प्रारंभ होने तक जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। सृष्टि के निर्माता भगवान ब्रह्मा द्वारा अस्तित्व में आए इन जातीय समूहों को चार भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभक्त किया गया जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातीय समूहों का विकास हुआ। अनेक विद्वानों का मत इस बात की पुष्टि करता है कि जाति व्यवस्था का प्रारम्भ भारत में श्वेतवर्ण विजेता आर्यो तथा श्यामवर्ण विजित अनार्यो के संघर्ष से आर्य और दास दो जातियों का उदय हुआ । और कालक्रम में वर्ण सांकर्य, धर्म, व्यवसाय, श्रम विभाजन, प्रवास तथा भौगोलिक पार्थक्य से हजारों जातियां उत्पन्न हुई । दूसरा मत है कि जाति का उदय अनार्य समाज में आर्यो के आने से पहले हो चुका था ।और आर्यो के आगमन ने उसमे योगदान किया । इस मत के समर्थको को मान्यता है कि माया, जीवत्तवाद, निषेध और जादू आदि की भावनाओ से प्रभावित होकर विभिन्न समूह जब एक दूसरे के सम्पर्क में आए तो वे अपने विश्वास, संस्कृति, प्रजापति, धार्मिक कर्मकाण्ड आदि से एक दूसरे से पृथक बने रहे ।क्योंकि अनेक जातीय समूहों का विश्वास था कि खाद्य पदार्थो तथा व्यवसायिक उपकरणों पर परकीय प्रभाव अनिष्टकारी होता है। अतः छुआछूत और अंतर्विवाह संयुक्त समाज के अंग बने । ऐसा माना जाता है कि भारत में जाति व्यवस्था का उत्पन्न होना किसी एक व्यक्ति या सिद्धांत का परिणाम नहीं है बल्कि इस व्यवस्था पर कई कारकों ने अथवा सिद्धांतों नहीं प्रभाव छोड़ा है। ऋग्वेद काल से ही भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में अलग-अलग अवधारणाएं तथा सिद्धांत प्रचलित रहे हैं जिनमें -

पारंपरिक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार ऐसा माना जाता है कि भगवान ब्रह्मा द्वारा सर्वप्रथम जाति व्यवस्था को अस्तित्व में लाया गया। इसके अंतर्गत ऐसी मान्यता है कि भगवान ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय तथा वेश्यो के पेट से उत्पन्न होने की बात कही गई। प्राचीन काल से ही भारत में कई जातियां व उपजातियां विद्यमान थी जिन्हें प्रायः इन्हीं वर्गों से उत्पन्न माना गया है।

राजनीतिक सिद्धांत

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का राजनीतिक सिद्धांत ब्राह्मण वर्ग द्वारा संपूर्ण समाज को नियंत्रित करने के अलावा शासन करने की भी व्याख्या करता है। जिसके परिणाम स्वरुप अपने राजनीतिक हित को साधने की दृष्टि से जाति व्यवस्था की उत्पत्ति की गई।

धार्मिक सिद्धांत

भारत में कई धार्मिक मान्यताएं प्रचलन में थी जिनके अंतर्गत राजा और ब्राह्मण जैसे धर्म से जुड़े लोग उच्च पदों पर आसीन थे लेकिन अलग-अलग लोग शासक के यहां शासन के लिए अलग-अलग कार्य किया करते थे। जिन्होंने भारत में जाति व्यवस्था को आधार प्रदान करने का कार्य किया।

व्यवसायिक सिद्धांत

कई विद्वानों ने जाति व्यवस्था के संबंध में उनके व्यवसाय को प्रमुख आधार माना है जिसके अंतर्गत श्रेष्ठ तथा निम्नतर जाति की अवधारणा विकसित हुई। इसी क्रम में **गॉल्ट** ने कहा है की जाति ऐसा सगोत्र समूह या ऐसे समूहों का संग्रहण है जिनका अपना एक सामान्य नाम होता है। और जिसकी मूल उत्पत्ति उनके पारंपरिक व्यवसाय से होती है। और जिस से एक ऐसा समुदाय बन जाता है जिसमें सभी की एक जैसी पहचान होती है और जिसके मूल बिंदु समाज किसी अन्य वर्ग की तुलना में आपस में अंतर संबद्ध होते हैं।

भारत में जातीय वर्गीकरण

भारतवर्ष में आज लगभग 3000 जातियां वा उपजातियां अस्तित्व में है। भारतीय इतिहास में जिन जातियों को अनुसूचित जातियों में गिना जाता है प्राचीन काल में वे जातियां विभिन्न नामो से प्रचलन में थी जैसे- दास, दस्यु, अनार्य, शुद्र, अतिशूद्र, अछूत, अस्पृश्यत एवम तिरस्कृत वर्ग, अंत्यज, पंचम एवम छितरे हुए वर्ग, हरिजन, दलित।

तालिका 1: 1951-2001 **तक अनुसूचित जनजातियों में दशकीय वृद्धि**

क्रम संख्या	वर्ष	अनुसूचित जनजाति की कुल संख्या (लाख में)	भारत की कुल आबादी में प्रतिशत
1	1951	225	6.23 %
2	1961	302	6.87 %
3	1971	380	6.94 %
4	1981	538	6.940 %
5	1991	678	8.08 %
6	2001	843	8.20 %

तालिका 2: विभिन्न जनजातीय बाहुल्य राज्यों में जनजातियां

क्रम	अनुसूचित जनजाति क्षेत्र	अनुसूचित जनजातियां
1	उत्तर पूर्वी भारत	बोडो, मिसी, जाकसा,
2	बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल	असूर, बिरसा, बिजहोर, भुईया,
3	आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, म प्र, महाराष्ट्र	अरवा, भील, भीलेरा, चेंचु, डबला,
4	उड़ीसा, तमिलनाडु	बागड़ा, खोड़, सवारा, लम्बाड़ी
5	गुजरात	भील, भीला, डाफर, कोली
6	राजस्थान	भेरात, मीणा, सहारिया, गरासिया
7	केरल	गड़बा, इरुला, मॉल कुरवन, पनीयन,
8	उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड	बाड़कोल, भूटिया, भोकसा, भुइया
9	हिमाचल प्रदेश, जम्मू काश्मीर	गुर्जर, गद्दी, किन्नर, लाहोली, लद्दाखी
10	अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह	अंडमानी, ओंगे, जारवा, निकोबारी, शोमपेन

भारत में जातियों के वर्गीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार उपलब्ध नहीं है जिसके चलते भारत जैसे जातीय विभिन्नता वाले राष्ट्र में जातियों का वर्गीकरण करना बेहद मुश्किल प्रतीत होता है । कई शोध इस बात की समीक्षा करने में शत प्रतिशत सफलता के शिखर को नहीं छू सके हैं। भारत में जातियों की जटिल सामाजिक संरचना औपनिवेशिक शासन के दौरान तथा उत्तर औपनिवेशिक भारत में भी काफी उलझी होने के कारण जातिगत जनसंख्या के वास्तविक आंकड़े भी इस दिशा में निरर्थक सिद्ध हुए है ।

हालांकि तालिका 1 के आंकड़े जनजातियों की दशकीय वृद्धि को सूचित करते है परंतु शहरी क्षेत्रों के सन्दर्भ में यह आंकड़ा संदेहजनक स्थिति में है । यदि तालिका 1 के आंकड़ों को आधार बनाया जाए तो यह ज्ञात होता है कि भारत में जनजातियों की कुल आबादी वर्ष 1951 में भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या की 6.23% थी जो पांच दशक बीत जाने के बाद वर्ष 2001 की जनगणना के मुताबिक 8.23% हो गई है । जातिगत आबादी की यह वृद्धि दर इस संबंध को और भी बल देती है कि जातियों के स्वरूप में लगातार परिवर्तन आने से जाति व्यवस्था का क्षेत्र भी वृद्धि कर रहा है । पुराने रीति रिवाजों का प्रचलन बंद होता जाता है। [3]

इस तथ्य की पुष्टि पर बल देते हुए ब्लंट ने भी कहा है कि जाति व्यवस्था इतनी परिवर्तनशील हैं कि इसका कोई भी विवरण अधिक समय तक यथार्थ नहीं रह पाता । नई जातीय और उपजातियां बनती रहती है । [4]

इसके पस्चात तालिका 2 के आंकड़े जनजातियों के सन्दर्भ में भारत के विभिन्न राज्य वार जनजातियों की उपलब्धता को सुनिश्चित करते है । 2001 की जनगणना रिपोर्ट में दर्ज देश की कुल जनजातीय आबादी लगभग 843 लाख, देश के समस्त प्रदेशों में पाई जाती है ।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत अध्ययन का विश्लेषण कर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है की भारतीय जाति व्यवस्था अपनी सामाजिक जटिलता के पश्चात भी निरंतर परिवर्तशील रही है। चार वर्णो अथवा जातीय समूहों से प्रारम्भ होकर यह व्यवस्था आधुनिक काल में असंख्य जातियों के रूप में परिवर्तित होकर अपना स्वरुप विस्तार कर रही है। जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों का विश्लेषण इस बात को बल देता है की इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ बेहद महत्वपूर्ण मानी जाती रही है जिनके अनुसार एक विचारधारा जातियों को व्यक्ति विशेष के व्यवसायिक पेशे की पक्षधर है तो वही दूसरी विचारधारा इस सम्बन्ध में धार्मिक सिद्धांतो को आधार मानती है। इसके अतिरिक्त भारत में जातिगत जनगणना के आंकड़े भी जातीय वृद्धि को दर्शाते है जो इस बात के प्रमाण है की भारत में जातीय संगठनों का विकास तेजी से हुआ है।

संदर्भ सूची

1. एम एन श्रीनिवास (2009), आधुनिक भारत में जाति, राजकमल प्रकाशन समूह
2. घुर्ये जी.एस (1961), कास्ट,क्लास एंड ऑक्यूपेशन, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, पृष्ट 27.
3. जे एच हट्टन, मंगलनाथ सिंह (2007), भारत में जाति प्रथा : स्वरूप, कर्म और उत्पत्ति, पृष्ठ 112.
4. ब्लंट, कास्ट सिस्टम, पृष्ठ.208
5. कोबर, ए एल (1939), कास्ट इन्सिक्लोपीडिआ ऑफ़ सोशल साइंस, लंदन पृष्ट 254.